दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

वर्ष आठवाँ
अंक आठवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

मगसिर
२४७९

जैनशासन में प्रथम कर्तव्य

अहो! ज्ञानप्रकाशी भगवान आत्मा का निर्णय किए बिना जीव को कभी धर्म नहीं हो सकता; जीव ने अनंतकाल में सबकुछ किया, परन्तु 'मैं स्वयं ज्ञानस्वभावी हूँ'—इसप्रकार अपने स्वभाव का निर्णय कभी नहीं किया है। स्वसन्मुख होकर 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसा निर्णय करना, वह अनंतकाल में नहीं की हुई अपूर्व वस्तु है। 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसा अंतर में ज्ञानवस्तु का निर्णय और अनुभव करना, वह समस्त जैनशासन का सार है। कोई पूछे कि प्रथम हमें क्या करना?—तो ज्ञानी कहते हैं कि 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसा अंतर में निर्णय करके उसका अनुभव करना चाहिए।—यही जैन शासन में प्रत्येक जीव का प्रथम कर्तव्य है।

[—प्रवचन से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

१२

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मानस्तंभ-समाचार

तीर्थधाम सोनगढ़ में जो भव्य मानस्तंभ बन रहा है, उसका काम चालू है और नीचे की तीन पीठिकाएँ लगभग तैयार हो चुकी हैं। तीनों पीठिकाएँ बारह चित्र तथा श्लोकादि अंकित संगमरमर से सुशोभित हैं।

इस मानस्तंभ की कुल ऊँचाई ६३ फीट होगी। पहले ६२ फीट ऊँचाई लिखी गई थी, लेकिन अब ६३ फीट करने का निर्णय हुआ है।

इस मानस्तंभ के लिये संगमरमर का पूरा सामान (नक्काशी तथा चित्रकारी सहित) तैयार करने का ऑर्डर ५०३५१) रुपये में जयपुर के प्रसिद्ध कारीगर मूलचंद रामचंद नाठा को दिया गया है। संगमरमर का बहुत सा सामान तैयार होकर रेलवे द्वारा चार वेगन में सोनगढ़ आ गया है। आखिरी दो वेगन सामान कार्तिक शुक्ला २ के दिन आया था। इसमें मानस्तंभ की पीठिका के चित्र तथा मानस्तंभ में बिराजमान होनेवाली कुछ प्रतिमाएँ थी। इसलिये इस सामान के आ जाने की खबर मिलते ही मुमुक्षु-मंडल में आनंद फैल गया था और कार्तिक शुक्ला ३ के दिन उल्लासपूर्वक प्रतिमाजी आदि का ग्राम-प्रवेश हुआ था। तदुपरांत मानस्तंभ के प्रारम्भ का मंगल-मुहूर्त भी इसी दिन हुआ था। प्रातः काल के प्रवचन के बाद मानस्तंभ के निकट पूज्य स्वामीजी ने मांगलिक सुनाया था और तत्पश्चात् पूज्य बहिनश्रीबहिन के सुहस्त से मानस्तम्भजी का प्रथम पाषाण स्थापित हुआ था।

आत्मधर्म

मगसिर २४७९ ❀ वर्ष आठवाँ ❀ अंक आठवाँ

रत्नत्रय का भक्त

श्री श्राविका-ब्रह्मचर्याश्रम के उद्घाटनोत्सव-प्रसंग पर आश्रम में पूज्य गुरुदेव का मंगल-प्रवचन

[वीर सं. २४७८, माघ शुक्ला ५ : श्री नियमसार कलश २२०, सूत्र १३५]

[गतांक से पूर्ण]

सिद्ध भगवन्त किसप्रकार सिद्धि को प्राप्त हुए ?

यहाँ सिद्ध की भक्ति की बात करते हुए, वे सिद्ध भगवन्त किसप्रकार सिद्धि को प्राप्त हुए, वह भी बतलाते हैं। 'पुराणपुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय परिणति से सम्यक्रूप से आराधना करके सिद्ध हुए'... अनादिकाल से इसप्रकार जीव सिद्ध होते ही आ रहे हैं। आज से पूर्व शुद्ध रत्नत्रय द्वारा अपने कारणपरमात्मा की आराधना कर-करके अनंत तीर्थंकर, केवली भगवन्त तथा गणधर सिद्ध हो गये हैं। महाविदेहक्षेत्र में मोह का मार्ग कभी बन्द नहीं होता, वहाँ सदैव जीवों को मुक्ति होती ही रही है।—किसप्रकार ?—शुद्ध रत्नत्रय द्वारा कारणपरमात्मा की आराधना से। कोई जीव कुल-परम्परा आदि की पकड़ करके व्यवहार के आश्रय से धर्म मानते हों तो यहाँ कहते हैं कि अरे भाई ! तुम्हारी कुल-परम्परा सच्ची या अनंत सिद्ध भगवन्त हो गये, उनके परम्परा सच्ची ? जो अनंत पुराणपुरुष मोक्ष को प्राप्त हुए, उन्होंने किसी व्यवहार के या भेदरत्नत्रय के आश्रय से मोक्ष प्राप्त नहीं किया है, परन्तु वे तो अभेदरत्नत्रय द्वारा शुद्ध आत्मा की ही आराधना करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, इसलिये वही एक मुक्ति का मार्ग है; तो तुम दूसरा उपाय कहाँ से लाए ?

अनंत संत सिद्धि को प्राप्त हुए, वे किसप्रकार ?—शुद्ध कारणपरमात्मा की अभेद

–रत्नत्रयपरिणति से आराधना करके वे सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। त्रिकाल यह एक ही सिद्धि का उपाय है।—'एक होय त्रणकालमां परमारथनो पंथ।' आत्मा की आराधना, आत्मा की प्रसन्नता, आत्मा की कृपा, आत्मा की भक्ति, आत्मा की सिद्धि शुद्ध रत्नत्रय द्वारा ही होती है, रागादि के द्वारा नहीं होती। शुद्ध रत्नत्रय परिणति से अंतरस्वरूप में ढलकर–नमकर–झुककर–प्रणमन करके ही समस्त सिद्ध भगवन्त सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। अन्तर में रागरहित शुद्ध रत्नत्रय द्वारा आत्मस्वभाव की आराधना करना, वह एक ही त्रिकाल मोक्षमार्ग है, और सत्समागम से स्वभाव की रुचि–ज्ञान–मनन का अभ्यास करना, वह व्यवहार है।

यहाँ रत्नत्रयपरिणति द्वारा शुद्ध कारणपरमात्मा की आराधना करने को कहा है। कारणपरमात्मा का अर्थ क्या?—त्रिकाली शक्ति से परिपूर्ण द्रव्य, वह कारणपरमात्मा है और वर्तमान केवलज्ञानादि पूर्ण पर्याय प्रगट हो, वह कार्यपरमात्मा है। वह पूर्ण कार्य प्रगट होने के कारणरूप सामर्थ्य द्रव्य में त्रिकाल है। एकसमय की पर्याय को गौण करके जो पूर्ण सामर्थ्यरूप वर्तमान स्वरूपप्रत्यक्ष तत्त्व है, उसी को कारणपरमात्मा कहा जाता है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप निर्विकल्प पर्याय या परमात्मपर्याय प्रगट हो, वह कार्य है। वह कार्य ध्रुव आत्मद्रव्य में से आता है; इसलिये उस ध्रुव द्रव्यस्वभाव को कारणपरमात्मा कहा है; वह सदाकाल एकरूप परिपूर्ण है। मोक्षमार्ग की पर्याय को मोक्ष का कारण कहना, वह व्यवहार से है; वास्तव में कहीं मोक्षमार्ग की पर्याय में से मोक्षपर्याय नहीं आती; मोक्षपर्याय तो आत्मद्रव्य में से आती है, इसलिये ध्रुव आत्मा ही मोक्ष का निश्चयकारण है, उसी को नियमसार में 'कारणपरमात्मा' कहकर गाया है। सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की समस्त पर्यायें उस ध्रुव कारणपरमात्मा के अवलम्बन से प्रगट होती हैं। उसकी परम महिमा करके उसका अवलम्बन लेना ही परमार्थभक्ति है और वही मोक्षमार्ग है।

जो 'शुद्ध कारणपरमात्मा' कहलाते हैं, उन सिद्ध भगवान की ही बात नहीं है किन्तु समस्त आत्मा वैसे हैं। सिद्ध भगवान का त्रिकाली द्रव्य, वह उनका कारणपरमात्मा है, तथा उसके आश्रय से उन्हें जो पूर्ण शुद्धपर्याय प्रगट हुई, वह उनका कार्यपरमात्मा है; इसीप्रकार इस आत्मा का ध्रुवस्वभाव है, वह अपना कारणपरमात्मा है और उसका आश्रय करने से वह अपना कार्यपरमात्मा है—इसप्रकार अपना शुद्ध कारणपरमात्मा ही परमात्मदशा का परम कारण है; इसके अतिरिक्त किसी भी बाह्य कारण से परमात्मदशा प्रगट नहीं होती।

जगत में सिद्ध भगवन्त अनादिकाल से हैं और सिद्धि का उपाय भी अनादि से है। छह मास और आठ समय में छह सौ आठ जीव मोक्ष में जाते हैं—ऐसा क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। इससमय इस भरतक्षेत्र में मोक्ष नहीं है परन्तु महाविदेह में से छह मास और आठ समय में ६०८ आठ जीव मोक्ष में जाते हैं। वे अपने शुद्ध कारणपरमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप अभेदरत्नत्रयपरिणति से आराधना करके ही सिद्ध होते हैं। निज शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से जो शुद्ध रत्नत्रयपरिणति प्रगट हुई, उसके द्वारा कारणपरमात्मा की भक्ति कर-करके पुराणपुरुष सिद्धि को प्राप्त हुए हैं; वर्तमान में भी यही उपाय है और भविष्य में भी यही उपाय होगा। निमित्त से, राग से या भेदरत्नत्रय से भी तीनकाल में मुक्ति नहीं होती। चैतनयस्वरूप की भावना करते-करते उसमें रागरहित लीनता हो जाये, उसका नाम अनुपचाररत्नत्रय है और उसी से मुक्ति होती है। तीर्थंकरनामकर्म के कारणरूप जो सोलहकारण भावना का भाव है, वह भी व्यवहार है; वह आस्रव है-धर्म नहीं है। प्रथम तो दर्शनशुद्धि के बिना अज्ञानी के सोलहकारण भावना ही यथार्थ नहीं होती। सोलकारण भावना ज्ञानी के ही होती है, परन्तु ज्ञानी उस भाव को आदरणीय नहीं मानते। ज्ञानी तो जानते हैं कि शुद्धरत्नत्रय द्वारा निजकारणपरमात्मा की आराधना करना ही सिद्धि का उपाय है।

परमात्मदशा कहाँ से प्रगट होती है ?—प्रत्येक आत्मा परमात्मशक्ति से परिपूर्ण है, उसमें से ही परमात्मदशा प्रगट होती है। जिसप्रकार लैंडी पीपर को घिसने से चौंसठपुटी चरपराहट प्रगट होती है; वह कहाँ से आती है ? खरल में से प्रगट नहीं होती किन्तु उसी में चौंसठपुटी चरपराहट शक्तिरूप से थी, वही प्रगट हुई है। न तो वह बाहर से आई है और न एक से लेकर त्रेसठपुटी तक की चरपराहट में से आई है; उस अधूरी चरपराहट का तो अभाव होकर पीपल के सामर्थ्य में से ही पूरी चरपराहट आयी है। चूहे की लैंडी भी लैंडी पीपल जैसी लगती है, परन्तु उसे घिसने से उसमें से चरपराहट प्रगट नहीं होती; क्योंकि उसमें वैसा स्वभाव नहीं है। लैंडी-पीपल में ही वैसा स्वभाव है, उसी में से चरपराहट प्रगट होती है, वह किसी संयोग के कारण नहीं होती। उसीप्रकार आत्मा परिपूर्ण परमात्मशक्ति से भरा है, उसके श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता द्वारा उसमें से परमात्मदशा प्रगट होती है, किन्तु कहीं शरीरादि को घिस डालने से परमात्मदशा प्रगट नहीं होती, क्योंकि उसमें वैसा स्वभाव नहीं है; और अपूर्ण दशा में से भी पूर्णदशा नहीं आती। ध्रुवस्वभाव त्रिकाल भरा है, उसी के अवलम्बन से अपूर्णदशा का व्यय होकर पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो जाती है। इसप्रकार शुद्ध आत्मा की आराधना ही सिद्धि का उपाय है। इस उपाय से ही भूतकाल में अनंत सिद्ध हुए,

वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में इसी उपाय से सिद्ध होंगे। सिद्धि का दूसरा उपाय नहीं है। मेरी परिपूर्ण परमात्मदशा मेरे आत्मा में से ही प्रगट होनेवाली है—ऐसा जाने बिना धर्म नहीं होता। कपड़ा लेने जाये या शाक आदि लेने जाये तो पहले उन वस्तुओं की पहिचान कर लेता है; उसीप्रकार धर्म करने के लिये पहले उसकी पहिचान तो कर लेना चाहिए कि धर्म कहाँ से आता है? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन चैतन्यरत्नों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। निज कारणपरमात्मा में अभेददृष्टि, उसका ज्ञान और उसमें एकाग्रता करके जो जीव रत्नत्रय की भक्ति करता है वह भक्त है और वह परमात्मदशा को प्राप्त होता है। ऐसे उपाय से अनंत सिद्ध भगवन्त मुक्त हुए, उन्हें पहिचानकर उनकी भक्ति करना, वह निर्वाण के परंपराहेतुभूत व्यवहारभक्ति है। परन्तु जब अंतर में निज परमात्मस्वभाव की आराधनारूप निश्चयभक्ति वर्तती है, तब उसे उपचारविनयरूप व्यवहारभक्ति कहा जाता है। जो आसन्नभव्य जीव अपने स्वभाव में अन्तर्मुख होकर शुद्धरत्नत्रय प्रगट करता है, उसके परमार्थभक्ति है और वह भक्ति ही मुक्ति का कारण है। ●●

संसार-परिभ्रमण का कारण और
उससे छूटने का उपाय

एवं अनादिकालं पंचप्रकारे भ्रमति संसारे।
नानादुःखनिधाने जीवः मिथ्यात्वदोषेण॥७२॥
इति संसारं ज्ञात्वा मोहं सर्वादरेण त्यक्त्वा।
तं ध्यायत स्वस्वभावं संसरण येन विनश्यति॥७३॥

इसप्रकार, पाँच प्रकार के संसार में यह जीव मिथ्यात्व दोष के कारण अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। कैसा है संसार?—अनेक प्रकार के दुःखों का निधान।

इसप्रकार, पूर्वोक्त प्रकार के संसार को जानकर, हे भव्य जीवो! सर्व प्रकार के उद्यम द्वारा मोह को छोड़कर उस आत्म-स्वभाव को ध्याओ!—कि जिससे संसार के भ्रमण का नाश हो।

—स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा

कारण-कार्य

प्रथम ही सब सिद्धांत का मूल यो है, जो वस्तु का कारण कार्य जानिये, जेते संसारसौं पार भए ते सब परमात्मा के कारण कार्य जानि-जानि भये। तीनों काल जिस परमात्मा के ध्यायेतैं मुक्त भये, जिसका कारण-कार्य न जान्या तौ तिसनैं कहा जान्या? यातैं कार्य-कारण जानिये।

सो कारण-कार्य काहेतैं उपजै है? सो कहिये हैं:—

पुव्व परिणामजुदं कारणभावेहि परिणदं दव्वं।
उत्तरपरिणामजुदं कज्ज दव्वं हवे णियमा॥१॥

यह सिद्धांत में बताया है [कि] पूर्व परिणामयुक्त जो द्रव्य है, सो कारणभाव परिणया है [और] उत्तर परिणामयुक्त जो द्रव्य है, सो कार्यभाव परिणया है, काहतैं? पूर्वपरिणाम उत्तरपरिणामकौं कारण हैं, पूर्व परिणाम का व्यय उत्तर [परिणाम] के उत्पादकौ कारण है। जैसैं—माटी पिंड का व्यय, घट कार्य कौ कारण है। कोई प्रश्न करै है [कि] उत्तर परिणाम उत्पाद में कहा कार्य होय है? ताका समाधान—स्वरूपलाभ लक्षणकौं लिये उत्पाद, स्वभाव प्रच्यवन लक्षणकौं लियें व्यय है, तातैं स्वरूपलाभ में कार्य है, यह निःसंदेह जानौं। समय-समय परमात्मा में होय है, यात संत ऐसे कारण-कार्य कौं परिणामद्वारकरि जानौं, कारण [और] कार्य परिणामहीतैं होय हैं। वस्तु के उपादान के दोय भेद कहे, सो कहिये है।

उक्तं च अष्टसहस्त्रीमध्ये—

त्यक्ताऽत्यक्तात्मरूपं यत् पूर्व्वापूर्वेण वर्तते।
कालत्रयेऽपि तद्द्रव्यमुपादानमिति स्मृतं॥१॥
यत्स्वरूपं त्यजत्येव यन्नात्यजति सर्वथा।
तत्तोपादान द्रव्यस्य क्षणकं शाश्वतं यथा॥२॥

अर्थः—द्रव्य के त्यक्तस्वभाव तौ, परिणाम व्यतिरेक स्वभाव है; अत्यक्तस्वभाव गुणरूप है, अन्वय अभाव है, सो गुण तौ पूर्वे है सो ही रहे है, परिणाम अपूर्व-अपूर्व होंय हैं, यह द्रव्य का उपादान है सो परिणाम कौं तो तजै गुण कौं सर्वथा न तजै। तातैं परिणाम खिणक उपादान है, गुण सासतौ उपादान है, वस्तु उपादानतैं सिद्ध। कोई प्रश्न करै है [कि] उत्पादादि जीवादिकतैं भेदस्वरूप सधैं हैं वा अभेद सधैं हैं? जो अभेद सधैं हैं तौ त्रिलक्षणपणौं न होय। जो भेद सधै हैं तौ

सत्ता-भेद भए, सत्ता बहोत (बहुत) भयें तहां विपरीत होय। ताकौ समाधान—लक्षणभेद है, सत्ताभेद नाहीं, तातैं सत्तातैं अभेदसंज्ञादि भेद जानना। वस्तु की सिद्धि उत्पाद, व्यय, ध्रुव तीनौं करि है अष्टसहस्त्रीमध्ये उक्तं च—

पयोव्रतो न दध्यति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम्॥६०॥
घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थं जनो याति सहेतुकम्॥५९॥

[देवागम आप्तमीमांसा]

जैसैं काहू पुरुषने पय (दूध) का व्रत किया है—मैं पयही पीवौं, सो दही कौ भोजन न करै। दही का जिसके व्रत है सो पय का भोजन न करै, अर गोरस का [जिसके] नियम है—मैं गोरस न ल्यौं (लूं), सो गोरस न ग्रहै, तातैं तत्त्व है सो तीनौं कौ लिये है। पय है सो गोरस का पर्याय है; दही पर्याय है। एक पर्यायमात्र ग्रहैं गोरस की सिद्धि नाहीं, सब गोरस नांही आवै। तैसैं एक उत्पाद में अथवा व्यय में अथवा ध्रुव में वस्तु की सिद्धि नाहीं, वस्तु तीनों तैं सिद्ध है। जैसे पंचवर्ण का चित्र है, एक ही वर्ण ग्रहेतै चित्र गह्या न जाय। तैसैं तीनों (उत्पाद व्यय और ध्रौव्य) मयी वस्तु है, एक ही करि न ग्रह्या जाय है। जो वस्तुकौं ध्रुव ही मानों तौ दोय दोष लागैं, एक तौ ध्रुव ही कौ नाश होय, उत्पाद-व्यय बिना अर्थक्रियाकारक न होय, [और] अर्थक्रिया बिना वस्तु की सिद्धि न होय-षट्गुणी वृद्धि-हानि न होय, तब अगुरुलघु न होय, तब वस्तु हल्का-भारी होय, तब जड़ होय तातैं चिद ध्रुवता न रहै। दूसरा यह दोष—खिणकवर्ती (क्षणवर्ती) पर्याय भी नित्य होय। तब अध्रुव भी ध्रुव होय। अर केवल उत्पाद ही मानिये तब दोय दोष लागैं—एक तौ उत्पाद कौ कारण व्यय कौ अभाव होय, व्ययकौ अभाव हुये उत्पादकौ अभाव होय। दूजौ दोष यह -जो असत् उत्पाद होय, तब आकाशफूल देखिजे (देखिये देखे) सो कल्पना झूठी छै। व्ययही केवल मानिये तौ दोय दोष लागैं—एक तौ विनाश कारण उत्पादकौ अभाव होय, तब विनाश भी न होय, कारणहीन कार्य न होय। दूजो यह दोष-जौ सत् कौ उच्छेद (विनाश)होय, सत्कौ उच्छेद हुए ज्ञानादिचेतनाकौ नाश होय, तातैं त्रिलक्षण वस्तु है। *[चिद्विलास, पृष्ठ ३६-३८]*

एक समय के कारण-कार्य में तीन भेद

समय समय कारण कार्यद्वारि (र) आनंद का विलास होय है, सौ परिणामतैं कारण-कार्य है। पूर्वपरिणाम कारण, उत्तरपरिणाम कार्य कौ करै है, सो ताके तीन भेद एक ही कारण-कार्य में सधैं हैं सो कहिये है। जैसैं षट्गुणी वृद्धि-हानि एकसमय में सधै है, तैसैं एकवस्तु परिणाम में भेद कल्पनाद्वारकरि तीन भेद साध्यिे है, द्रव्यकारणकार्य, गुणकारणकार्य, पर्यायकारणकार्य। प्रथम द्रव्य का कारण-कार्य कहिये है—

द्रव्य अपने स्वभावकरि आप ही आपकौ कारण है, आप ही कार्यरूप है; अथवा गुण-पर्याय कारण है द्रव्यकौ, गुण-पर्यायवान् द्रव्य ['गुण पर्यय वद् द्रव्यं' तत्त्वा०सू०] ऐसा सूत्र का वचन है। पूर्व परिणामयुक्त द्रव्य कारण है, उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य कार्य है। अथवा सत् कारण है, द्रव्य कार्य है। अथवा 'द्रवत्वयोगात् द्रव्यं' द्रवत्वगुण कारण है, द्रव्य कार्य है। द्रव्य कौ कारण-कार्य द्रव्य ही में है; काहेतैं? द्रव्य अपने कारण-स्वभावकौं आप ही परिणमकरि अपने कार्य कौं आप ही करै है। द्रव्य में जो कारण-कार्य न होय तौ कैसैं द्रव्यपणा रहै? तातैं संसार में जेते पदार्थ हैं तेते अपने अपने कारण-कार्य कौं सब करैं हैं, तातै जीवद्रव्य का कारणकार्यकरि जीव का सर्वस्व प्रगटै है, जो कुछ है सो कारणकार्य ही है। आगे गुण का कारणकार्य कहिये है:—

गुणकौं द्रव्य-पर्याय कारण है, गुण कार्य है, केवल द्रव्यपर्याय ही कारण नहीं, गुण भी गुणकौ कारण है, गुणही कार्य है। एक सत्तागुण सब गुणकौ कारण है, सबगुण कार्य हैं। एक सूक्ष्मगुण सब गुणकौ कारण है, सब गुण कार्य हैं। एक अगुरुलघुगुण सब गुण कौ कारण है, सब गुण कार्य हैं। एक प्रदेशत्व गुण सब गुण कौ कारण है सब गुण कार्य हैं। याही प्रकार एक-एक गुण सब गुणकौ कारण है, सब गुण कार्य हैं। अब उसही गुण का कारण उसमें कहिये है। सत्ता का निजकारण सत्ताही में है, सत्ता द्रव्य-गुण-पर्याय का 'है' लक्षणकौं लिये है, तातै उत्पाद व्यय ध्रुव सत्ता का लक्षण सत्ताकौ कारण है, सत्ता कार्य है। ऐसैं ही अगुरुलघुत्वगुण निजकारणकरि निजकार्यकौं करै है, उस अगुरुलघुत्वगुण का विकार षट्गुणी वृद्धि-हानि है, उसही वृद्धि-हानिकरि अगुरुलघु [गुण का] कार्य निपजा है, तातैं आप अगुरुलघु आपही कौ कारण है, ऐसे ही सब गुण आप आपकौं कारण हैं, आप कार्यको आपही करै है। अन्यगुण निमित्तकारण ग्राहकनयकरि अन्य गुण के कारणतै अन्य गुण कार्य हो है, अन्य गुण ग्राहक निरपेक्ष केवल निजगुण ग्राहकनयकरि निज गुण निज का कारण-कार्य कौं करै है। द्रव्य बिना गुण न होय, यातैं

गुणकार्यकौ द्रव्य कारण है, पर्याय न होय तौ गुणरूप कौण परिणवै ? तातैं पर्याय कारण है, गुण कार्य है, ऐसै अनेक भेद गुणकारक-कार्य के हैं। आगे पर्याय का कारण-कार्य कहिये है:—

द्रव्य गुण पर्याय का कारण है, पर्याय कार्य है, काहेतै ? द्रव्य बिना पर्याय न होय। जैसे समुद्र बिना तरंग न होय। ऐसैं पर्याय का आधार द्रव्य है, द्रव्य हीतैं परिणति उठै है। उक्तं च[१]—

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्याया प्रतिक्षणं।
उन्मज्जंति निमज्जंति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥

ऐसैं पर्याय का कारण द्रव्य है। आगे गुण-पर्याय का कारण कहिए है—गुण का समुदाय द्रव्य है, द्रव्य न होय गुण बिना, द्रव्य बिना पर्याय न होय, एक तौ यो विशेषण है, दूजा (दूसरा) गुण बिना गुणपरिणति न होय; तातैं गुण पर्यायकौ कारण है। गुण परिणवै है पर्याय, तब गुणपरिणति नाम पावै है, तातैं गुण कारण है पर्याय कार्य है। पर्याय का कारण पर्याय ही है। पर्याय की सत्ता, गुण बिना ही पर्यायकौं कारण है, पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्यायकौं कारण है। पर्यायकौ वीर्य पर्यायकौ कारण है। पर्याय का प्रदेशत्व पर्यायकौ कारण है अथवा उत्पाद व्यय कारण है, काहेतैं ? उत्पाद-व्ययसों पर्याय जानि परै है, तातै ये पर्यायके कारण हैं, पर्याय कार्य है। ऐसे कार्य-कारण का भेद है, सो वस्तु का सर्वरस सर्वस्व कारण-कार्य ही है। कारण-कार्य जान्या तिनि सर्व जान्या। इस परमात्मा के अनंतगुण हैं, अनंतशक्ति हैं, अनंतगुण की अनंतानंत पर्याय हैं, अनंत चेतना चिन्ह में अनंत अनंताअनंत सात भंग सधैं हैं। या प्रकार करि इत्यादि अनंतमहिमा वस्तु की है, सो कहां लौं कोई कहे, तातैं संत हैं, जे स्वरूप अनुभौ (भव) अमृतरस पीय अमर हौ। *[चिद्विलास पृष्ठ ८६-९०]*

१. आलापपद्धति

जैसा उपादान, वैसा निमित्त

[ज्ञानी के सर्वत्र शुद्धात्मकथा, अज्ञानी के सर्वत्र विकथा]

समयसार की चौथी गाथा में श्री आचार्यदेव कहते हैं कि, सर्व जीवों ने पूर्वकाल में अनंतबार काम-भोग-बन्धन की ही कथा सुनी है; परन्तु शुद्ध आत्मा की कथा पहले कभी नहीं सुनी है। शब्द भले ही कानों में पड़े, परन्तु अंतर में शुद्धात्मा की रुचि करके उसे लक्ष में नहीं लिया; इसलिये उसकी बात भी नहीं सुनी—ऐसा कहा है। अब इसी बात को पलटकर कहा जाये तो, जिन्होंने शुद्धात्मा को लक्ष में लिया है, वे जीव परमार्थ से शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त दूसरी बात भी नहीं सुनते; ज्ञानी वास्तव में काम-भोग-बंधन की कथा सुनते ही नहीं, क्योंकि उसमें एकत्वबुद्धि नहीं होती; शुद्धात्मा में ही एकत्वबुद्धि होने से उसका श्रवण कर रहे हैं।

किसी समय ज्ञानी युद्ध आदि की बात करते हों... उस समय भी उनकी दृष्टि अंतर में एकत्व-विभक्त आत्मा पर होने से वास्तव में तो वे अपने भावश्रुत में से एकत्व-विभक्त आत्मा का ही श्रवण करते हैं। उनके भावश्रुत का परिणमन आत्मा में एकत्वरूप से ही हो रहा है, इसलिये निमित्तरूप से द्रव्य-श्रवण भी वैसा ही माना है। और अज्ञानी तो काम-भोग-बंधन के भावों के साथ ही एकत्वरूप से परिणमित हो रहा है; इसलिये वह वैसी ही कथा सुनता है—ऐसा कहा गया है। श्री तीर्थंकर भगवान की सभा में बैठा हो और दिव्यध्वनि कानों में पड़ रही हो, उस समय भी वह अज्ञानी काम-भोग-बंधन की विकथा ही सुन रहा है, क्योंकि उपादान में जैसा परिणमन हो, वैसा ही निमित्त में आरोप आता है। शब्द तो जड़ हैं, उनमें 'विकथा' या 'सुकथा' नहीं है; परन्तु जहाँ उपादान में विपरीत परिणमन हो, वहाँ निमित्तरूप से श्रवण को 'विकथा' कहा है। अज्ञानी को जो कथा विषय-कषाय पोषक हो, वह कथा ज्ञानी को वैराग्यपोषक होती है। कथा के शब्द एकसमान हैं; तथापि एक जीव अपने विपरीत उपादान के कारण उसे विषय-कषाय का निमित्त बनाता है, इसलिये उसके लिये वह विकथा है; और दूसरा जीव अपने सीधे उपादान के कारण उसी को वैराग्य का निमित्त बनाता है; इसलिये उसके लिये वह विकथा नहीं है।

इसमें उपादान-निमित्त का सिद्धान्त भी आ जाता है कि उपादान को निमित्त के अनुसार परिणमित नहीं होना पड़ता। यदि निमित्त के अनुसार उपादान होता हो तो एक ही कथा सुनने वाले ज्ञानी और अज्ञानी—दोनों के एक से परिणाम होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। इससे निश्चित होता है कि जैसा निमित्त हो, वैसा ही उपादान होता है—ऐसा सिद्धान्त नहीं है; परन्तु जैसा उपादान हो, वैसा निमित्त होता है—ऐसा समझना।

[श्री समयसार गाथा ४ के प्रवचन से]

''...दर्शाऊँ तो प्रमाण करना''

[अनंत ज्ञानियों के अभिप्राय की एकता]

'मैं एकत्व-विभक्त आत्मा को बतलाता है'—ऐसा कहकर, फिर आचार्यदेव कहते हैं कि 'यदि मैं शुद्धात्मा बतलाऊँ तो उसे प्रमाण करना।' वर्तमान में तो मैं बतलाने वाला हूँ और भविष्य में इस समयसार द्वारा अन्य कोई संत शुद्धात्मा बतलाएँ तो वह भी मैं ही बतला रहा हूँ—ऐसा मानकर उसे प्रमाण करना, क्योंकि भावअपेक्षा से हमारी एकता है। भविष्य में भी शुद्धात्मा बतलाने में मात्र इस शास्त्र के अक्षर ही निमित्त नहीं होंगे, परन्तु कोई चेतनवन्त साक्षात् सुनाने वाले ज्ञानी पुरुष ही निमित्त होंगे—ऐसा भी इसमें आ जाता है। शास्त्र स्वयं अपने भाव को नहीं समझाएँगे किन्तु ज्ञानी आत्मा उनका भाव समझाएँगे। कोई ऐसा माने कि 'कभी ज्ञानी का निमित्त प्राप्त किये बिना ही मात्र शास्त्र पढ़ने से मुझे आत्मधर्म की प्राप्ति हो गई'—तो वह मिथ्यादृष्टि और स्वच्छन्दी है।

आचार्यभगवान कहते हैं कि वर्तमान में तो मैं स्वयं इस समयसार द्वारा शुद्धात्मा बतला रहा हूँ, उसे तुम—सुननेवाले—प्रमाण करना, और भविष्य में अन्य ज्ञानी इस समयसार द्वारा शुद्धात्मा दर्शाएँ तो उस समय भी—'अभिप्राय अपेक्षा से एकता होने से'—वह मैं ही दश रहा हूँ—ऐसा समझकर हे श्रोताओं! तुम प्रमाण करना। मेरा जो भाव है, उसे कोई ज्ञानी जब-जब (हजारों वर्ष बाद) समझाएँ, तब-तब उसे सुननेवाले प्रमाण करना! मुझे जैसा शुद्धात्मा दर्शाना है, वैसा शुद्धात्मा भविष्य में कोई दूसरे ज्ञानी दर्शाएँ तो उस समय कहनेवाले के भेद से भेद नहीं पाड़ना परन्तु भाव अपेक्षा से एकता है, इसलिये प्रमाण करना।

मैं अपने समस्त निज वैभव से एकत्व-विभक्त आत्मा दर्शाता हूँ, मुझे शुद्ध आत्मा ही दर्शाना है और तुम भी अपने स्वानुभव से उसे प्रमाण करना; बीच में दूसरा कथन आये तो उस पर मेरी मुख्यता नहीं है और तुम भी उसकी मुख्यता न करके शुद्ध आत्मा को ही ग्रहण करना। वर्तमान काल के श्रोता या भविष्य काल के श्रोता—सब को यह बात लागू होती है। वर्तमान में इस समयसार में जो एकत्व-स्वभाव कहना चाहता हूँ, वह वर्तमान में तुम प्रमाण करना, और जब-जब कोई ज्ञानी-संत भविष्य में भी आत्मस्वभाव का कथन करनेवाले मिलें, तब-तब हे सुननेवाले! उसे तुम प्रमाण करना!—इसप्रकार आचार्यदेव ने अन्ततक संधि की है क्योंकि अभिप्राय की अपेक्षा से एकता है, इसलिये जो एक ज्ञानी कहते हैं, वही सर्व ज्ञानी कहते हैं। एक ज्ञानी ने एक

प्रकार का शुद्धात्मा बतलाया और दूसरे ज्ञानी ने दूसरे प्रकार का—ऐसा नहीं है; समस्त ज्ञानियों का भाव एक-सा है।

देखो, इसमें श्री कुंदकुंद भगवान के साथ समस्त ज्ञानियों के अभिप्राय की संधि हो जाती है। जब-जो ज्ञानी जैसा शुद्धात्मा को बतलाएँ, वैसा ही कुंदकुंदाचार्यदेव ने बतलाया है। और कुंदकुंदाचार्यदेव ने जो शुद्धात्मा बतलाया है, वही समस्त ज्ञानी दर्शाते हैं। इसप्रकार, एक ज्ञानी जो शुद्धात्मा कहते हैं, वह श्री कुंदकुंदाचार्यदेव ही कहते हैं क्योंकि भावअपेक्षा से समस्त ज्ञानियों की एकता है। इसलिये ज्ञानी जो शुद्धात्मा कहना चाहते हैं, उसे अंतर की आत्मसाक्षी द्वारा प्रमाण करना!—'दर्शाऊँ तो प्रमाण करना'—इसमें से ऐसा रहस्य निकलता है।

[श्री सीमंधर प्रभु की भक्ति-प्रसंग पर समयसार गाथा ५ पर पूज्य स्वामीजी को स्फुरित न्याय]

धर्मी को विघ्न नहीं है

कोई ऐसा कहे कि चाहे जितना धर्म किया हो, तथापि मृत्युकाल में किसी तीव्र असाता का उदय आये तो आत्मा का अहित हो जाता है।—धर्मी जीव के ऐसा होता है,—ऐसा जो मानते हैं, उन्हें आत्मा की श्रद्धा ही नहीं है और धर्म क्या वस्तु है, उसका भी उन्हें भान नहीं है। जिसे स्वतंत्र आत्मा की यथार्थ श्रद्धा है—ऐसे धर्मी का किसी काल, किसी भी संयोग में अहित नहीं होता। नित्य, अविनाशी आत्मा में जो जागृत है, उसे तीनकाल तीनलोक में विघ्न नहीं है। स्वयं पर से भिन्न है, तथापि पर से विघ्न माने उसे पृथक् स्वतंत्र स्वभाव की श्रद्धा ही नहीं है। जगत की मूर्खता का क्या कहें? अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करके पर से हानि-लाभ माननेवाला सदैव आकुलित ही रहता है... कोई कहे कि आत्मा को तो जान लिया, ज्ञान तो हो गया, परन्तु बंधनभाव और मिथ्यात्व दूर हुआ या नहीं?—उसकी खबर नहीं है—तो उसने आत्मा को जाना ही नहीं है।

— समयसार प्रवचन से

आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है ?

श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य श्री कानजी स्वामी के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार

लेखांक ५] [अंक ९१ से आगे

[जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि—'प्रभो! यह आत्मा कौन है और उसकी प्राप्ति किसप्रकार होती है?' उसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा अनंत धर्मोंवाला एक द्रव्य है और अनंत नयोंवाले श्रुतज्ञानप्रमाण द्वारा स्वानुभव से वह ज्ञात होता है। प्रमाण द्वारा ज्ञात होनेवाले आत्मा का यहाँ ४७ नयों से वर्णन चल रहा है। उसमें द्रव्यनय, पर्यायनय, और सप्तभंगी के अस्तित्व-नास्तित्व आदि सात नय—इसप्रकार कुल नव नयों से जो वर्णन किया उसका विवेचन आ चुका है। आगे का यहाँ दिया जा रहा है।]

[१०] विकल्पनय से आत्मा का वर्णन

आत्मद्रव्य विकल्पनय से बालक, युवा और वृद्ध—ऐसे एक पुरुष की भाँति, सविकल्प है।

यहाँ विकलप का अर्थ भेद है। जिसप्रकार एक पुरुष में बालक, युवा और वृद्ध—ऐसे भेद पड़ते हैं; उसीप्रकार भेदनय से आत्मा गुण-पर्याय के भेदवाला है। वस्तु में अनंत गुण हैं, उनमें परस्पर कथंचित् भेद है और उनकी क्रमशः होनेवाली पर्यायों में भी परस्पर भेद है। वस्तु में दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि जो भेद हैं, उन्हें विकल्प कहा जाता है। विकल्प का अर्थ राग नहीं; परन्तु विकल्प अर्थात् भेद। एक आत्मा ही एक समय में भेदवाला है। विकल्पनय से देखने पर आत्मा अनंत गुण-पर्यायों के भेदरूप भासित होता है, ऐसा उसका धर्म है। जिसप्रकार पुरुष एक होने पर वह बालक, युवा, वृद्ध आदि भिन्न-भिन्न अवस्थारूप से दिखाई देता है, उसीप्रकार आत्मा वस्तुरूप से एक है, तथापि उसमें गुण-पर्याय के भेद होते हैं, वह कहीं उपाधि नहीं है, विकार नहीं है, दोष नहीं है, परन्तु वस्तु का स्वरूप ही है। दृष्टान्त में तो पुरुष की बाल, युवा, वृद्ध अवस्थाएँ एकसाथ नहीं किन्तु क्रमशः हैं; बाल्यावस्था के समय युवावस्था नहीं है, और युवावस्था के समय वृद्धावस्था

नहीं है परन्तु सिद्धान्त में वैसा नहीं है; सिद्धान्त में तो आत्मा में अनंतधर्म एकसाथ ही कथंचित् भेदरूप विद्यमान है। एक धर्म पहले और दूसरा धर्म फिर—ऐसा भेद नहीं है; परन्तु दर्शन सो ज्ञान नहीं, ज्ञान सो दर्शन नहीं—ऐसे भेद से दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनंत धर्म एकसाथ हो विद्यमान हैं। एक समय में अनंत गुण हैं; 'अनंत गुण'—ऐसा कहते ही कथंचित् भेद सिद्ध हो जाता है। यदि एक धर्म को दूसरे धर्म से भेद न हो तो अनंत धर्म ही न रहें।

आत्मा एक द्रव्य है, तथापि उसके स्वभाव में अनेक प्रकारता है, उसे विकल्पनय जानता है।

द्रव्य एक है और गुण अनंत हैं; उन गुणों में एक गुण दूसरे गुणोंरूप नहीं होता-ऐसा भेद है।

द्रव्य एक है और प्रदेश असंख्य हैं; उनमें से एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप नहीं है-ऐसा भेद है।

द्रव्य एक और पर्यायें अनंत; एक-एक गुण की एक-एक पर्याय, इसप्रकार अनंत गुणों की अनंत पर्यायें एक समय में हैं। उनमें एक गुण की पर्याय दूसरे गुण की पर्यायरूप नहीं है-ऐसा भेद है। अथवा एक वस्तु की तीनों काल की अनंत पर्यायें हैं, उनमें से एक समय की पर्याय दूसरे समय की पर्याय से भेदवाली हैं।

और द्रव्य-गुण-पर्याय को भी परस्पर कथंचित् भेद है। जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; गुण है, वह पर्याय नहीं है; 'द्रव्य' और 'गुण' इसप्रकार दोनों के नाम पृथक्; द्रव्य एक और गुण अनंत—इसप्रकार दोनों की संख्या पृथक्, इत्यादि प्रकार से भेद पड़ते हैं।

—ऐसा आत्मा का भेदधर्म है। विकल्पनय से देखने पर आत्मा भेदवाला ज्ञात होता है; परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि भेदधर्म के समय ही अभेदधर्म भी साथ ही है। अभेदता को चूककर एकान्त भेदवाला ही माने तो उसे भेदनय नहीं कहा जा सकता, वह तो एकान्त मिथ्यामान्यता है।

सभी आत्मा एकत्रित होकर तो एक-अद्वैत नहीं है, परन्तु एक भिन्न आत्मा भी सर्वथा अद्वैत नहीं है, उसमें भी कथंचित् भेद है। यहाँ 'कथंचित् भेद' कहा उसका अर्थ 'पर से कथंचित् भेद और पर के साथ कथंचित् अभेद'—ऐसा नहीं समझना। पर से तो बिलकुल भेद ही है—पृथक्त्व ही है; परन्तु यहाँ तो स्वयं अपने में ही कथंचित् भेद-अभेदपना है, उसकी यह बात है। यह जो भेद है, सो अशुद्धता नहीं है, दोष नहीं है परन्तु वस्तु का धर्म है; शुद्ध आत्मा में भी ऐसा भेदधर्म है। सिद्ध के आत्मा में से ज्ञान-दर्शन-चारित्र इत्यादि के भेद निकल नहीं जाते, सिद्ध के आत्मा में भी वैसे भेद हैं, उसे विकल्प कहा जाता है। सिद्ध को रागरूप विकल्प नहीं है परन्तु ऐसा

गुणभेदरूप विकल्प है।—ऐसा विकल्पनय वाला साधक जानता है; सिद्ध के कहीं नय नहीं होते।

सिद्धभगवान को सादि-अनंत सिद्धदशा रहती है, तथापि प्रतिक्षण उनकी पर्याय बदलती रहती है; पहले समय की पर्याय दूसरे समय नहीं रहती—ऐसा भेद है। प्रतिक्षण पर्याय का बदलना वह कहीं उपाधि नहीं है परन्तु वस्तु का स्वभाव है। सिद्ध को भी प्रतिसमय नवीन नवीन आनंदमग्न पर्यायें होती रहती हैं। आत्मा की अपूर्ण पर्याय का नाश होकर पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, परन्तु उस पूर्ण पर्याय का नाश होकर पुनः अपूर्ण पर्याय हो—ऐसा कभी नहीं हो सकता। और पूर्णदशा प्रगट हो जाने के पश्चात् परिणमन रुक जाये—ऐसा भी नहीं है। पूर्ण दशा होने के पश्चात् ज्यों का त्यों पूर्ण दशारूप परिणमन सदैव होता ही रहता है। वहाँ भी गुणभेद और पर्यायभेद रहता है—ऐसा आत्मा का भेदधर्म है। यह धर्म प्रत्येक पदार्थ में अनादि-अनंत है।

अब भेदधर्म के सन्मुख अभेदधर्म कहते हैं।

❀❀❀

[११] अविकल्पनय से आत्मा का वर्णन

आत्मद्रव्य अविकल्पनय से, एक पुरुषमात्र की भाँति अविकल्प है। जिसप्रकार एक पुरुष बाल-युवा-वृद्ध ऐसे भेदरहित एक पुरुषमात्र है, उसीप्रकार अभेदनय से आत्मा अभेद है। अनंत गुण होने पर भी कहीं आत्मा अनंत नहीं हो जाते, आत्मा तो एक ही है। जिसप्रकार बाल, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओं में रहनेवाला पुरुष तो एक ही है; जो बाल्यावस्था में था, वही युवावस्था में है,—इसप्रकार पुरुषरूप से उसमें भेद नहीं पड़ते, पुरुषरूप से तो वह एक ही है; उसीप्रकार गुण-पर्याय के भेद होने पर भी द्रव्यरूप से तो आत्मा एक अभेद है। अभेदनय से आत्मा को देखें तो उसमें भेद नहीं हैं, ऐसा आत्मा का अभेद धर्म है। यदि वस्तु में भेद न हो तो अनंतधर्म नहीं हो सकते, और यदि अभेद न हो तो वस्तु की एकता नहीं हो सकती; अथवा तो प्रत्येक गुण स्वयं ही स्वतंत्र वस्तु सिद्ध होगा। गुण अनंत होने पर भी उनका धारक गुणी तो एक ही है। शक्तियाँ अनंत और शक्तिमान एक—इसप्रकार वस्तु में भेद-अभेद धर्म हैं। अभेदनय में तो निगोद से सिद्ध तक सर्व अवस्थाओं में विद्यमान एक अभेद आत्मा ही भासित होता है; निगोद और सिद्ध ऐसी पर्यायों के भेद उसमें भासित नहीं होते। जिसप्रकार बाल-युवा-वृद्धदशा में पुरुष तो पुरुष ही है; उसीप्रकार अशुभ, शुभ या शुद्ध—सर्व अवस्थाओं में आत्मा तो वही का वही है; अवस्था या गुण के भेद किये बिना एक अभेद आत्मा को लक्ष में ले, उसका नाम अभेदनय अथवा अविकल्पनय है।

वस्तु में भेदधर्म और अभेदधर्म—दोनों एक समय में एक ही साथ हैं; आत्मा त्रिकाल ऐसे धर्मवाला है; ऐसी अनंत धर्मवाली वस्तु का ज्ञान, सो अनेकान्त है। ऐसे ज्ञान के बिना आत्मा का अनुभव नहीं होता।

जिसप्रकार राजा को उसके विशेषणों से सम्बोधन करके अर्ज करे तो उत्तर देता है, उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा तीनलोक का राजा है—तीनलोक का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ, उसे उसके अनंत धर्मों से जैसा है, उसीप्रकार से सम्बोधन करे-जाने तो वह उत्तर दे, अर्थात् उसका अनुभव हो। अनंतधर्मों वाले आत्मा को यथावत् जाने बिना ज्ञान सच्चा नहीं होता, और उस ज्ञान के बिना आत्मा की प्राप्ति-अनुभव नहीं होता। इसलिये जिसे धर्म करना हो, उसे आत्मा के धर्मों द्वारा आत्मा को पहिचानना चाहिए।

११ नयों से आत्मद्रव्य का वर्णन किया; अब नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—ऐसे चार नयों से आत्मद्रव्य का वर्णन करेंगे। (—क्रमशः)

'हीरे की रज!'

जो हीरा सान पर चढ़े, वह तो बहुमूल्य है ही, परन्तु उसकी जो रज खिरती है, उसके भी सैकड़ों रुपये उपजते हैं; उसीप्रकार वस्तु का सत्यस्वरूप सुनकर जो जीव वस्तुस्वरूप को पकड़ता है, उसकी तो बात ही क्या? वह तो अमूल्य हीरे को ग्रहण करता है; परन्तु ऐसा सत्यस्वरूप सुनकर जो शुभभाव होता है, उसके कारण भी उच्च पुण्यबंध होता है... जो इस अध्यात्म छठवीं गाथा के अंतरभावों को समझे, उसका मोक्षभाव विमुख नहीं होता, उसकी मुक्ति हुए बिना नहीं रहती।

[समयसार-प्रवचन से]

अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की
कुछ शक्तियाँ

[३]

दृशिशक्ति

ज्ञानमात्र आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से आत्मा की अनंत शक्तियों का निर्मल परिणमन अभेदरूप से होता है, उसका यह वर्णन है। अनंत शक्तियों में से यहाँ कुछ शक्तियों का वर्णन किया जा रहा है, उसमें मात्र द्रव्यस्वभाव का ही वर्णन है। यही चैतन्य की अविनाशी लक्ष्मी है। आत्मा में समस्त शक्तियों का एकसाथ ही परिणमन होता है, परन्तु अनेक शक्तियाँ समझाने के लिए यहाँ उनका पृथक-पृथक वर्णन किया है। रागादि भाव तो आत्मा के त्रिकाली स्वरूप में है ही नहीं; आत्मा में अधिक से अधिक माना जाये तो ऐसे अनंत गुणों का गुणभेद है; परन्तु अभेद आत्मा की दृष्टि के बिना मात्र गुणभेद के लक्ष से भी आत्मा ज्ञात नहीं हो सकता।

आत्मा ज्ञानमूर्ति है, उसके स्वभाव में शरीर नहीं है, कर्म नहीं है और रागादि विकार भी नहीं है। पर्याय में विकार होता है, उसे गौण करके, जो अकेला ज्ञानमात्र द्रव्यस्वभाव है, उसकी दृष्टि से परिणमित होने पर निर्मल ज्ञानादि अनंत गुण एक साथ उछलते हैं, वह आत्मा है। आत्मा के स्वभाव में क्या-क्या है, उसकी यह बात है; आत्मा क्या-क्या नहीं है, उसकी बात इस समय नहीं है; आत्मा में देहादि की क्रिया नहीं है, राग नहीं है—उसका इस समय वर्णन नहीं है; परन्तु आत्मा में अनंत शक्तियाँ अस्तिरूप हैं, उनका यह वर्णन है। अनंतशक्तिरूप स्वभाव की अस्ति कहने से उससे विरुद्ध ऐसे रागादि भावों की नास्ति उसमें आ ही जाती है।

सर्वप्रथम तो चैतन्यमात्र भाव को धारण करनेवाली जीवत्वशक्ति का वर्णन किया; वह जीवत्वशक्ति जीवद्रव्य को बनाए रखने का कारण है। यहाँ तो भेद से वर्णन करके समझाया है, वास्तव में कहीं जीवत्वशक्ति और जीवद्रव्य पृथक् नहीं हैं। द्रव्य कहीं जीवत्वशक्ति से पृथक् नहीं है कि जीवत्वशक्ति उसे बनाए रखे। आत्मद्रव्य का स्वभाव ही चैतन्यरूप से अनादि-अनंत स्थित रहने का है; उसका यहाँ जीवत्वशक्तिरूप से वर्णन किया है। तत्पश्चात चितिशक्ति का वर्णन करके

आत्मा का चैतन्यस्वभाव बतलाया है।

देखो भाई! प्रत्येक आत्मा का स्वरूप जैसा यहाँ कहा जा रहा है वैसा ही है। प्रत्येक आत्मा अपनी अनंत शक्ति का स्वामी परमेश्वर है; परन्तु देह की ओर दृष्टि करके वहीं अपनत्व मानकर अपनी प्रभुता को भूल रहा है। उसे यहाँ आत्मा की प्रभुता बतलाते हैं। अरे जीव! तू पामर नहीं है परन्तु अनंत शक्तिमान परमेश्वर है। इस समय भी आत्मा स्वयं अनंत शक्ति से परिपूर्ण प्रभु है, परन्तु श्रद्धा और ज्ञानरूपी आँखों पर पट्टी बाँध रखी है, इसलिये स्वयं अपनी प्रभुता को नहीं देखता।

अनंत शक्ति का पिण्ड चैतन्यमूर्ति आत्मा है; उसमें शरीर-मन-वाणी या कर्म तो तीनकाल में कभी रहे ही नहीं हैं; पर्याय में एक समयपर्यंत का विकार अनादिकाल से रहा है परन्तु वह विकार कभी आत्मा के स्वभावरूप नहीं हो गया है, क्षणिक विकार के समय भी नित्यस्थायी स्वभाव का अभाव नहीं हो गया है। स्वभाव तो त्रिकाल अनंत शक्ति का पिण्ड ज्यों का त्यों है। उस त्रिकाली स्वभाव की प्रतीति करने से परिणमन में स्वरूप का लाभ होता है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल ज्यों के त्यों है ही, परन्तु उनका स्वीकार करते ही पर्याय में उसका लाभ होता है अर्थात् निर्मल परिणमन होता है। उस परिणमन में अनंती शक्तियाँ एकसाथ परिणमित होती हैं, उसका यह वर्णन चलता है। जीवत्वशक्ति और चितिशक्ति का वर्णन किया; अब तीसरी दृशिशक्ति का वर्णन करते हैं:—

दृशिशक्ति अनाकार उपयोगमयी है। आत्मा स्वयं ही अनंत धर्मों के समुदायरूप परिणत एक ज्ञप्तिमात्र भावरूप होने से वह ज्ञानमात्र है; उस ज्ञानमात्र भाव के भीतर ऐसी दृशिशक्ति भी साथ ही है। ज्ञानमात्र भाव में एक समय में अनंत शक्तियाँ एक साथ ही हैं, आगे-पीछे नहीं हैं।

यह दृशिशक्ति अनाकार उपयोगमय है; इसलिये उसमें पदार्थों के विशेष भेद नहीं पड़ते; विशेष भेद किये बिना पदार्थों की सामान्य सत्ता को ही दर्शन-उपयोग देखता है। ऐसी दर्शनक्रियारूप आत्मा की शक्ति है, उसका नाम दृशिशक्ति है।

'यह जीव है, यह अजीव है' - ऐसे भेद डालकर लक्ष में लिया, वह तो ज्ञान है; स्व-पर, जीव-अजीव, सिद्ध-निगोद ऐसे भेदों को लक्ष में न लेकर सामान्यरूप से 'सब सत् है'—इसप्रकार सत्तामात्र को देखना, सो दर्शन है।

आत्मा और समस्त पदार्थ सामान्यरूप से ध्रुवरूप रहते हैं और विशेष अंशरूप से बदलते हैं। उसमें समान्य-विशेष के भेद न डालकर दर्शन समस्त पदार्थों को सत्तामात्र देखता है। यहाँ 'आकार' का अर्थ विशेष अथवा भेद है। पदार्थों के विशेष अथवा भेदों को लक्ष में न लेकर, उनकी

सामान्य सत्तामात्र का अवलोकन करता है; इसलिये दर्शन-उपयोग अनाकार है। 'यह अनाकार उपयोग है'—ऐसा जिसने लक्ष में लिया, वह तो ज्ञान है। स्व और पर, सामान्य और विशेष—सब सत् है; उस सत्मात्र को दर्शन-उपयोग देखता है। 'सब सत् है' इसलिये 'सत्' अपेक्षा से पदार्थों में जीव-अजीव इत्यादि भेद नहीं पड़ते। इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि दर्शनउपयोग जीव-अजीव सबको एकमेकरूप देखता है। पदार्थों की जैसी भिन्न-भिन्न सत्ता है, वैसी ही दर्शनउपयोग देखता है; परन्तु वह सत्तामात्र ही देखता है अर्थात् 'यह सत् है' इतना ही वह लक्ष में लेता है। सत् में 'यह जीव है और यह अजीव है, यह हेय है और यह उपादेय है'—ऐसे विशेषभेद करके जानना ज्ञान का कार्य है। दर्शन को, ज्ञान को, आनंद को, समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय को और तीन लोक के समस्त पदार्थों को दर्शनशक्ति विकल्प बिना देखती है; परन्तु उसमें 'यह जीव है, यह ज्ञान है'—ऐसे कोई भेद वह नहीं डालती। 'यह जीव है, यह अजीव है, यह स्व है, यह पर है'—इसप्रकार समस्त पदार्थों को ज्ञान भिन्न-भिन्नरूप से राग के बिना जानता है। छद्मस्थ को ज्ञान से पूर्व दर्शनउपयोग होता है, और सर्वज्ञ को ज्ञान के साथ ही दर्शनउपयोग होता है। छद्मस्थ को भी ज्ञान और दर्शन दोनों का परिणमन तो एकसाथ ही है, परिणमन में कहीं ऐसा क्रम नहीं है कि पहले दर्शनशक्ति परिणमित हो और पश्चात् ज्ञानशक्ति परिणमित हो। शक्तियाँ तो सब एकसाथ ही परिणमित होती हैं, मात्र उपयोगरूप व्यापार में क्रम पड़ता है।

अनाकार उपयोगरूप दृशिशक्ति का परिणमन भी ज्ञान के साथ ही है। छद्मस्थ को भी ज्ञान और दर्शन के परिणमन में क्रम नहीं है। ज्ञान के साथ ही दर्शनशक्ति भी साथ में परिणमित होती ही है। समस्त शक्तियाँ एकसाथ ही परिणमित होती है—ऐसा यहाँ बतलाना है। आत्मस्वभाव के लक्ष से जो ज्ञानमात्र भाव परिणमित हुआ, उस ज्ञानमात्र भाव में रागादि विकार नहीं उछलते परन्तु दर्शनादि अनंत शक्तियाँ उछलती हैं। केवली भगवान को पहले दर्शन और फिर ज्ञान होता है—यह मान्यता तो मिथ्या है; परन्तु छद्मस्थ को भी पहले दर्शन परिणमित होता है और फिर ज्ञान परिणमित होता है—यह बात निकाल दी है। ज्ञानमात्र भाव में आत्मा की समस्त शक्तियाँ एकसाथ उछल रही है, इसलिये ज्ञान और दर्शन के परिणमन में समयभेद नहीं है।

अहो! आचार्यदेव ने निमित्त की या विकार की बात तो निकाल दी है, और भीतर के गुणगुणी भेद के विकल्प को भी निकाल कर अनंत शक्ति से अभेद द्रव्य का लक्ष कराया है। किसी निमित्त के या विकार के आश्रय से तो आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि विकसित नहीं होते, और भीतर

गुण-गुणी भेद के विकल्प के आश्रय से भी ज्ञान-दर्शनादि विकसित नहीं होते; अभेद आत्मा के आश्रय से ही समस्त शक्तियों के परिणमन विकसित हो जाता है।

भगवान आत्मा प्रति समय अपनी अनंत ऋद्धि को साथ रखकर परिणमित हो रहा है; परन्तु स्वयं अपनी ऋद्धि की महिमा भूलकर पर की महिमा में मोहित हो गया है। उसे आचार्य भगवान चैतन्य ऋद्धि बतलाते हैं कि अरे जीव! तेरी अनंत ऋद्धि तुझ में ही भरी है, इसलिये अपनी ऋद्धि को तू बाह्य में मत देख। यदि अपने आत्मा के सन्मुख देखे तो तुझे अपनी अपार ऋद्धि दिखलाई दे। बाह्य जड़ पदार्थों में तेरे आत्मा की ऋद्धि नहीं है, इसलिये बाह्य में तो मत देख और अपने में भी अनंती शक्ति के भेद करके न देख; क्योंकि तेरा आत्मा समस्त शक्तियों से अभेदरूप है, उसमें से एक शक्ति पृथक् नहीं होती। एक शक्ति को पृथक् करके लक्ष में लेने से राग की उत्पत्ति होती है, परन्तु कहीं वस्तु में से वह शक्ति पृथक् नहीं होती। इसलिये अनंत शक्ति से अभेदरूप आत्मा को लक्ष में लेने से अपनी अनंत ऋद्धि प्रतीति में आ जाती है; उसकी प्रतीति होने से पर की महिमा दूर हो जाती है; इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शनरूपी अपूर्व धर्म है।

आत्मा की एक शक्ति में दूसरी अनंत शक्तियाँ भी अभेद हैं। उसमें एक दर्शनशक्ति है, वह अनाकार उपयोगमयी है। 'समस्त पदार्थ है',—इसप्रकार सबको सामान्यरूप से देखने की दर्शन की शक्ति है; परन्तु उनमें से किसी को आगे-पीछे करने की शक्ति उसमें नहीं है। दर्शन समस्त पदार्थों को सामान्यरूप से देखता है, उसमें आत्मा स्वयं भी साथ ही है; परन्तु 'यह मैं, और यह पर'—ऐसे भेद दर्शन नहीं करता।

जगत के समस्त पदार्थ सत्रूप है; जगत में एक जीव ही सत् है और दूसरा सब भ्रम है—ऐसा नहीं है; जीव भी सत् है और अजीव भी सत् है। समस्त पदार्थ सत् हैं; इसलिये 'है-पने' में (अस्तित्वपने में) सबका सामान्यपना आ जाता है; और उन सबकी सामान्य सत्ता को देखे—ऐसा एक उपयोग आत्मा में है; उसका नाम दर्शनउपयोग है।

यह दर्शनउपयोग सूक्ष्म है; छद्मस्थ उसे पकड़ नहीं सकता किन्तु जान सकता है। जो सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन कहलाते हैं, वे इस दर्शनउपयोग के भेद नहीं है, वे तो श्रद्धा की पर्याय के प्रकार हैं। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा है, उसमें इस दर्शनउपयोग की बात नहीं है परन्तु सम्यक्श्रद्धा की बात है। दर्शनउपयोग तो अज्ञानी के भी होता है, वह कहीं मुक्ति का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण तो शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप शुद्धोपयोग है। यहाँ तो

अनंत शक्तिवाले आत्मा की पहिचान कराने के लिये उसकी दर्शनशक्ति का खूब वर्णन किया है।

जगत में सब सत् है, उसे सामान्यरूप से दर्शन देखता है; और जगत में सब सत् होने पर भी उसमें एक जीव और दूसरा अजीव, एक सिद्ध और दूसरा निगोद, एक ज्ञानी और दूसरा अज्ञानी—ऐसी पृथक्-पृथक् विशेष सत्ता है, उसे जाननेवाला ज्ञानउपयोग है। दर्शन और ज्ञान दोनों शक्तियाँ आत्मा में अनादि-अनंत हैं।

सामान्य सत्तारूप से सब सत् है। द्रव्य सत् है, गुण सत् है और पर्यायें भी सत् हैं। और विशेषरूप से उसमें द्रव्य के जीव और अजीव ऐसे दो भेद हैं, जीव के गुणों में श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि भेद हैं; पर्याय में विकारी और निर्मल—ऐसे भेद हैं; क्षेत्र से भी असंख्य प्रदेशों का भेद है और काल से भी भूत-वर्तमान-भावी इत्यादिरूप से भेद हैं। उनमें विशेष भेदों को लक्ष में न लेकर समान्य सत्तामात्र को देखनेवाला दर्शन है और विशेषरूप से जाननेवाला ज्ञान है। यह दोनों शक्तियाँ आत्मा में एकसाथ अनादि-अनंत हैं। उनमें दर्शनशक्ति में सर्वदर्शीपना प्रगट होने की शक्ति भरी है, और ज्ञानशक्ति में सर्वज्ञता प्रगट होने की शक्ति भरी है। इस शक्ति की प्रतीति करने से व्यक्ति को प्रतीति भी हो जाती है। इस तीसरी शक्ति में दृशिशक्ति का वर्णन किया है, वह सामान्य शक्तिरूप है, और फिर नवमी सर्वदर्शित्वशक्ति का वर्णन करके इस शक्ति का पूरा कार्य बतलायेंगे।

धर्म कैसे होता है, उसकी यह बात चल रही है। प्रथम तो धर्म कहाँ होता है ? आत्मा का धर्म कहीं निमित्त में नहीं होता, देह में नहीं होता और शुभाशुभ विकार में भी नहीं होता; आत्मा का धर्म तो आत्मा की निर्मल पर्याय में होता है।—परन्तु वह धर्म कैसे होता है ? वह धर्म कहीं बाह्य में परसन्मुख देखने से नहीं होता, परन्तु अनंत धर्मवाले त्रिकाली आत्मा के सन्मुख दृष्टि करने से ही पर्याय में धर्म होता है। उस अनंत धर्मवाले आत्मा की शक्तियों का यह वर्णन हो रहा है।

आत्मा के परिणमन में अनंत शक्तियाँ उछलती हैं, परन्तु जो रागादि होते हैं, उन्हें यहाँ चैतन्यमूर्ति आत्मा के परिणमन में लिया ही नहीं है क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा की अनंत शक्ति में एक दृशिशक्ति है, उसका स्वभाव 'सब है' उसे देखने का है, परन्तु कहीं पर में अपनत्व मानकर मोह करने का या कुछ फेरफार करने का उसका स्वभाव नहीं है। ऐसी शक्तिवाले अपने आत्मा की प्रतीति करे तो स्वरूप की सावधानी जागृत हो और मूर्च्छा दूर हो जाये। अनादि से एक-एक समय का मोह है, वह आत्मा का भान करने से दूर हो जाता है। मैं त्रिकाली अनंत शक्ति का पिण्ड हूँ—ऐसा जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ एक समयपर्यंत का मोह नहीं रह सकता।

एक दर्शनशक्ति की यथार्थ प्रतीति करने से पूर्ण आत्मा की ही प्रतीति हो जाती है; क्योंकि दर्शनशक्ति में समस्त सत्ताओं को देखने का सामर्थ्य है, उसमें आत्मा की सत्ता भी आ गई। इसलिये दर्शनशक्ति की प्रतीति में उसके विषयभूत पूर्ण आत्मा भी प्रतीति में आ गया। उसमें अनंत शक्तियाँ अभेदरूप से आ जाती हैं, परन्तु विशेषरूप से समझाने के लिये गुण के लक्षणभेद से ४७ शक्तियों का वर्णन किया है। पूर्ण आत्मा की स्वीकृति के बिना उसकी एक शक्ति की भी यथार्थ स्वीकृति नहीं होती। एक दर्शनशक्ति ने लोकालोक के सर्व पदार्थों को देख लिया। इसलिये एक शक्ति ने सर्व शक्तियों को स्वीकार कर लिया; इसलिये एक दर्शनशक्ति की प्रतीति करने से 'अनंत गुण हैं'—ऐसी आत्मसामर्थ्य की प्रतीति भी हो ही गई।

'यह आत्मा है और यह राग है; राग को आत्मा से पृथक कर दूँ'—ऐसे भेद दर्शन में नहीं पड़ते; दर्शन तो द्रव्य-गुण-पर्याय के भी भेद किए बिना सत्तामात्र को ही देखता है। 'यह आत्मा है, यह राग है, यह मेरा स्वरूप नहीं है'—ऐसे भेद करके ज्ञान जानता है। दर्शनशक्ति के साथ ही ऐसी ज्ञानशक्ति भी परिणमित होती है। उस ज्ञान का कार्य स्व-पर का और हेय-उपादेय का विवेक करना है।

दर्शनशक्ति आत्मा के अनाकार उपयोगरूप है; उसका काल अनादि-अनंत है; परिणमन एक-एक समय का है। क्षेत्र से वह असंख्यप्रदेशरूप आत्मा के आकार की है। प्रदेशत्व के निमित्त से जैसा आत्मा का आकार है, वैसा ही उसकी प्रत्येक शक्ति का आकार है।

प्रश्न - यदि दर्शन को आकार है तो उसे 'अनाकार' क्यों कहा है ?

उत्तर - दर्शन को अनाकार कहा है वह तो, उसका विषय सामान्य सत्तामात्र है, इस अपेक्षा से कहा है। दर्शन को स्वयं को तो लंबाई-चौड़ाईरूप आकार है, परन्तु वह दर्शन अपने विषय में भेद नहीं डालता, उस अपेक्षा से उसे 'अनाकार' कहा गया है। 'अनाकार' कहने से भेद का अभाव समझना परन्तु लम्बाई-चौड़ाईरूप आकार तो दर्शन के भी हैं। प्रत्येक गुण आकारवाला ही है। जितना वस्तु का आकार है, उतना ही उसके प्रत्येक गुण का आकार है। वस्तु के समस्त गुणों का आकार समान ही होता है। किसी गुण का आकार छोटा-बड़ा नहीं होता। जड़-चेतन आदि का भेद करके नहीं देखता; इसलिये दर्शन अनाकार है; परन्तु यदि अपने असंख्य प्रदेशोंरूप आकार उसके न हो तो उसका अस्तित्व ही कहाँ रहे ? असंख्यप्रदेशरूपी चैतन्य-मन्दिर में आत्मा की अनंत शक्तियों का वास है। एक सूक्ष्म रजकण से लेकर सिद्ध भगवान तक किसी भी पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय आकाररहित नहीं होते; आकार भले ही छोटा या बड़ा हो। आकाररहित किसी का

अस्तित्व ही नहीं होता। आत्मा की दर्शनशक्ति का क्षेत्र तो असंख्यप्रदेशी ही है, परन्तु उसमें लोकालोक को देख लेने का सामर्थ्य है; आकार मर्यादित होने पर भी सामर्थ्य अमर्यादित है।

आत्मा के दर्शनउपयोग में लोकालोक का समावेश हो जाये, ऐसी उसकी अनादि-अनंत शक्ति है; जो उसकी प्रतीति करे, उसे उसका परिणमन होकर केवलदर्शन प्रगट होता है। यहाँ आत्मा की स्वभावशक्तियों के वर्णन में शुभ को तो कहीं याद भी नहीं किया, क्योंकि उसका तो आत्मा के स्वभाव में अभाव है। ऐसी शुद्धशक्ति के पिण्डरूप आत्मा को प्रतीति में लेते ही अन्य सब की रुचि हट जाती है, और शक्तियों का निर्मल परिणमन हो जाता है—ऐसी यह बात है। सत्स्वभावी भगवान आत्मा अनंत शक्ति का भण्डार स्वयंसिद्ध है; वह द्रव्य निरपेक्ष, उसकी अनंत शक्तियाँ भी निरपेक्ष और उसका समय-समय का परिणमन भी दूसरों से निरपेक्ष है। राग को तो आत्मा के परिणमन में नहीं गिना है। समस्त शक्तियों के निर्मल परिणमन से उछलनेवाला ज्ञानमात्रभाव ही आत्मा है। ऐसे आत्मा को प्रतीति में लेकर साधक जीव परिणमित होता है, उसके अनंत गुणों में पहली अवस्था बदलकर दूसरी निर्मल अवस्था एकसाथ होती है। ऐसे आत्मा की प्रतीति और बहुमान के अतिरिक्त धर्म के नाम से जो कुछ करे, वह सब अरण्य-रोदन की भाँति व्यर्थ है। जैसे, निर्जन वन में सिंह के पंजे में फँसा हुआ हिरन चाहे जितना आर्त्तनाद करे, परन्तु उसे कौन सुनता है ?—वहाँ कोई उसे बचानेवाला नहीं है। उसीप्रकार जीव, मिथ्यात्वरूपी, वन में रहकर चाहे जितने क्रियाकाण्ड करे, तथापि उसकी पुकार आत्मा नहीं सुनेगा क्योंकि उसे आत्मा की प्रतीति नहीं है। अनंतशक्तिसम्पन्न चैतन्य भगवान मैं ही हूँ—इस प्रकार अपने आत्मा की प्रतीति करना ही धर्म की नींव है।

अपने चैतन्यभगवान की प्रीति के बिना बाह्य में तीर्थंकर भगवान के सन्मुख देखा, परन्तु भगवान तो ऐसा कहते हैं कि 'तेरा कल्याण तुझमें है; इसलिये तू अपने में देख! तेरा आत्मा भी हमारे जैसा ही परिपूर्ण शक्तिसम्पन्न है।'—परन्तु जीव को उसका विश्वास नहीं बैठा, इसलिये समवशरण में जाकर भी जैसे का तैसा लौट आया। इसलिये यहाँ आचार्यभगवान कहते हैं कि अहो! आत्मा चैतन्यभगवान है, उसकी अनंत शक्ति का भण्डार उसी में भरा है, उसकी प्रतीति करो... उसकी महिमा करके उसमें अंतर्मुख होओ! तुम्हारे कल्याण का क्षेत्र तुम्हीं में है; आत्मा के गुणों का क्षेत्र आत्मा से पृथक् नहीं होता। आत्मा का निवासस्थान कहीं बाह्य में या शुभाशुभ विकार में नहीं है परन्तु अनंतशक्ति का पिण्ड आत्मा स्वयं ही अपना निवासस्थान है। उसका विश्वास करके उसका आश्रय करने से कल्याण प्रगट होता है। *[-तीसरी दृशिशक्ति का वर्णन पूरा हुआ]*

आत्मा को संतुष्ट करने की आकांक्षा

अज्ञानी जीवों की बाह्यदृष्टि होने से वे ऐसा मानते हैं कि मैं पर का आश्रय लूँ तो धर्म हो; परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! सब का आश्रय छोड़कर तू अंतर में अपने आत्मा की श्रद्धा कर; आत्मा को प्रगट करने का आधार अंतर में है। आत्मा की पवित्रता और आत्मा का आनंद आत्मा में से ही प्रगट होते हैं; बाह्य से किसी काल वे प्रगट नहीं होते।

जीवों को यह बात महँगी पड़ती है; इसलिये दूसरा मार्ग लेने से मानों धर्म हो जायेगा!—ऐसी उन्हें विपरीत शल्य लगी है। परन्तु भाई! अनंत वर्षों तक तू बाह्य में देखता रहे, तथापि धर्म प्रगट नहीं होगा। इसलिये पर का आश्रय छोड़कर स्वतत्त्व की रुचि करना-प्रेम करना-मनन करना ही सत्स्वभाव को प्रगट करने का उपाय है। इसलिये यदि अपना हित चाहते हो तो इसे समझो—ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

जिसे अपना हित करना है, उसे इसकी दरकार होगी। जिसे दरकार नहीं है, उसकी तो बात ही नहीं है; क्योंकि जगत के जीवों ने दुनिया कैसे संतुष्ट हो, और दुनिया को अच्छा कैसे लगे—यह तो अनंतबार किया है, परन्तु मेरा आत्मा यथार्थतया संतुष्ट कैसे हो सकता है और मेरे आत्मा को वास्तव में क्या अच्छा लगता है—इसका कभी विचार तक नहीं किया है। जिसे अपने आत्मा को संतुष्ट करने की आकांक्षा जागृत हुई, वह आत्मा को संतुष्ट करके ही रहेगा और उसे संतुष्ट होना अर्थात् आनन्दधाम में पहुँचना ही होगा। यहाँ जगत के जीवों को संतुष्ट करने की बात नहीं है, परन्तु जिसे अपने हित की आकांक्षा है, उसे क्या करना चाहिए - उसकी बात है। स्वयं ज्ञानानन्दस्वभाव से परिपूर्ण है, उसकी श्रद्धा करे तो उसमें से कल्याण हो; उसके अतिरिक्त अन्य किसी से तीनकाल-तीनलोक में कल्याण हो ही नहीं सकता।

[—समयसार-बंध अधिकार के प्रवचन से]

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक
प्रवचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों की—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार प्रवचन भाग १	६)	भजनमाला	
समयसार प्रवचन भाग २	५)	(अजमेर भजन-मण्डली की)	=॥)
समयसार प्रवचन भाग ३	४॥)	मूल में भूल	।।।)
प्रवचनसार हिंदी		मुक्ति का मार्ग	।।=)
(मूल संस्कृत टीका सहित)	५)	अनुभवप्रकाश	।।)
आत्मावलोकन	१)	अष्टपाहुड़	३)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें	१।=)	चिद्विलास	१=)
द्वादशानुप्रेक्षा	२)	दसलक्षणधर्म	।।।)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५॥)	जैन बालपोथी	।)
समयसार पद्यानुवाद	।)	सम्यक्दर्शन	२)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=॥)	स्तोत्रत्रयी	।=)
'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक मूल्य	३)	भेदविज्ञानसार	२)
आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७ वर्ष	प्रत्येक का ३॥।)	पंचमेरु पूजन	।।।)

(डाकव्यय अतिरिक्त)

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

: मुद्रक-प्रकाशक :
श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये
जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, मोटा आंकड़िया